



जनजातीय समुदाय के आंदोलन और साहित्य

डॉ. गोपी राम शर्मा¹, श्री अरविन्द सुलानिया²

¹सहायक प्रोफेसर, हिन्दी .

²सहायक प्रोफेसर, इतिहास, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्रस्तावना :

भारत में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं। प्रत्येक समूह की अपनी विशेषताएं अलग-अलग होते हुए भी वर्षों से भारतीय समाज व्यवस्था चलती आ रही है। विभिन्न समाजों के साथ यहां जनजातीय समाज आदिकाल से अस्तित्व में है। यह समाज अपने लम्बे इतिहास के साथ अपनी संस्कृति एवं मान्यताओं को धरोहर को समेटे हुए है। वर्तमान समय में आधुनिकता व टेक्नॉलोजी के विकास और जनसंख्या बढ़ोतरी के चलते मुख्य धारा का समाज इस जनजातीय समाज में हस्तक्षेप करने लगा है और इसीकारण जनजातीय समाजों की सुरक्षा को लेकर प्रश्न उठ खड़े हुए हैं।



जनजातीय समाज या आदिवासी का मूल निवासी या आदि निवासी होता है। भारतीय संविधान में इस समुदाय के लिए अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया है। यह आदि समाज मध्यप्रदेश, ओडिशा, गुजरात, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, राजस्थान और अंडमान निकोबार द्वीप समूह में फैला हुआ है। जनजातीय समुदायों का प्रकृति से शुरु ही गहरा संबंध रहा है। जब मानव जीवन अपने प्रारम्भिक काल में विकसित हो रहा था, तब सब कुछ प्रकृति से ग्रहण किया जाता रहा। प्रकृति सहयोगी-विरोधी बनकर सामने आयी। वहीं से जो बातें मनुष्य ने प्रकृति से अनूकूलन हेतु सीखी, उसी पर चलता आया है जाजातीय समाज। इस प्रकार प्रकृति और आदिम समाज जुड़ाव ही आदिम समाज की विशेषता है। रमणिका गुप्ता इस जुड़ाव भाव के बारे में कहती हैं— "अपने समूह और समाज से जुड़कर, प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी शैली और स्वभाव रहा है। वह प्रकृति से संवाद करता है, उसका सहयात्री है, उसको गाय की तरह पोसता और दुहता है, उसे कब्जे में लाने का कभी भी उसका लक्ष्य नहीं रहा है। प्रकृति के प्रकोप को वह सहता है, सहता रहा है और रोकता भी रहा है। उसके मुकाबले खड़ा भी रहता है। पर सदैव उसका मित्र बना रहता है, प्रतिशोध की भावना से भरकर वह प्रकृति को नष्ट नहीं करता। वह उसे रिझाता है, मनाता है और केवल जीने भर या जरूरत भर उससे लेता है, पर उसे बदले में देता भी है अपना प्यार, अपनी देखरेख और अपनी संवेदना।"¹

प्रकृति और आदिवासी का सम्बंध पालक व शिशु जैसे होता है। वह अपने जंगल, जमीन एवं डाल जैसे संसाधनों से अपना अस्तित्व बचाए हुए था, पर अब बाहरी समाज का हस्तक्षेप बढ़ गया है। कारपोरेट जगत और सरकारें जनजातियों के आशियाने उजाड़ने में लगी हैं। जंगलों को काट कर और जला कर उस भूमि को जिस प्रायोजित तरीके से उद्योग समूहों से सौंपा जा रहा है, उससे आदिवासी वहां से विस्थापित हो रहे हैं। बाहरी दुनिया के सम्पर्क आने से नगरों का प्रभाव उन तक जा रहा है। आधुनिक जीवन शैली और व्यावसायिक हितों के लिए आदिवासियों का शोषण किया जा रहा है।

भारतीय जनजातियों में संधाल, मीणा, नागा, भील, गाडे, थार, खस आदि प्रमुख जनजातियां हैं। इन्हें तीन श्रेणियों में बांटा गया है— प्रथम श्रेणी में मंगोलीय मूल के नागा, कूवी, गारो तथा असमी कबीले आते हैं। दूसरी श्रेणी में मुंडा, संधाल, कोरवा आदि पूरा आस्ट्रेलिया कबीले तथा तीसरी श्रेणी में हिमालचवासी खस कबीले या हिंद-आर्य रक्त मिश्रित प्रकार के भील आदि कबीले रखे जा सकते हैं। सभी श्रेणियों के कबीलों की संख्या

लगभग तीन करोड़ हैं। सांस्कृतिक पदानुसार इन सबको तीन भागों में पुनः बांटा गया है— (1) गांव-नगरों से दूर अर्थात् सम्पर्क विहीन (2) नगरीय संस्कृति से प्रभावित, (3) गांव-नगरों में बस चुके समूह। इनमें बाद के दोनों समूह बाह्य समाज या नगरों के प्रभाव में आ चुके हैं और सांस्कृति दृष्टि से समस्याग्रस्त हो रहे हैं। हालांकि नगरों की समीपता से उनका जनजीवन सुधर रहा है क्यों सभी कबीले अपने से उन्नत समाजों के सम्पर्क में आये हैं। जनजीवन केवल भौतिक विकास के मापदंडों से भी नहीं मापा जा सकता। परम्पराएं, रीति-रिवाज, संस्कृति जनजीवन की आधारशिला होती हैं। जनजातियों पर जो वर्तमान संकट है वह दोहरे किस्म का है। एक तो उनकी सांस्कृतिक पहचान में परिवर्तन आ रहा है। उनकी मूल पहचानें बदल रही हैं। यदि ऐसा चलता रहा तो ये समुदाय लुप्त प्रायः हो जाएंगे। दूसरा यह कि जो समूह नगर व बाह्य समाज के सम्पर्क में आया है, उसे बाह्य समूह से प्रतिस्पर्धा करनी है। इसी बात को हरिराम मीणा इस प्रकार कहते हैं— “वैश्वीकरण से होने वाली श्रेणियों में आदिवासी समाज कहीं नहीं टिकता। वह कहीं है तो नुकसान के खाते में ही शामिल दिखाई देता है। बांध परियोजना, राष्ट्रीय उच्च मार्ग, रेलवे लाइन, खनन व्यवसाय, औद्योगिकीकरण, अभ्यारण एवं अन्य कारणों से आदिवासियों का अनविद्य विस्थापन होता है तो एक तरफ से उन्हें अपनी पारम्परिक जमीन व परिवेश से खदेड़ने को विवश किया जाता है। इसकी वजह से उनकी जीविका के आधार भी समाप्त होते हैं। प्रश्न उठता है उनकी जीविकोपार्जन के विकल्प तलाश किए जाने का।”²

जनजातीय संस्कृति व समाज के संरक्षण के लिए सामाजिक, वैधानिक प्रयासों की आवश्यकता तो है ही, पर समाज भी उनका पहचान बन सकता है। साहित्य के द्वारा संवेदनशील कवि अपनी रचनाओं से समाज को दिशा दे सकता है। स्वयं आदिवासी भी साहित्य लेखन की ओर बढ़ आये हैं। उनको अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु साहित्य की भूमिका स्वीकार्य हुई है। वे मान रहे हैं— ‘जो रचेंगे, वह बचेंगे।’ रमदयाल मुण्डा, रोज केरकट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजुर, अनुज लुगुन, गोपीनाथ मोहंती, रामदयाल मुंडा, सरिता बड़ाइक, हरराम मीणा, वाल्टर भोंगरा, पीटर पाल एक्का, जेम्स टोप्पो, महादेव टोप्पो, जेवेयर कुजुर, एलिस एक्का आदि आदिवासी साहित्य को दिशा दे रहे हैं। महादेव टोप्पो आदिवासियों पर बढ रहे बाहरी हस्तक्षेप के बारे में लिखते हैं— “वैस सब कुछ से किया है तुमने बेदखल/घर द्वार, खेत-खलिहान, भाषा-संस्कृति, अध्यात्म/जंगल, पहाड़, नदी, झरने, पेड़-पत्ते, हवा-सब कुछ पूर्वजों ने तुम्हारे/सदा माना हमें ताड़न के लायक/शायद इसलिए अच्छी या बुरी हर स्थिति में/ देश का गौरवपूर्ण इतिहास संस्कृति/उत्कृष्ट परम्परा निभाते/हमेशा ‘ताड़न’ की मुद्रा में रहते हैं आप।”³

आदिवासी विस्थापन की समस्या से ग्रस्त है। सरकार अपने घरों, खेतों पर कब्जा करती जा रही है। विकास के नाम पर जंगलों का अतिक्रमण हो रहा है। जंगल काटे जा रहे हैं, प्राकृतिक सम्पत्तियों का दोहन हो रहा है। आदिवासी प्रकृति से साहचर्य स्थापित करता है और उससे उतना ही लेना है जितना उसे जरूरत है। वह प्रकृति पर चलते कुल्हाड़े पर दुःखी होता है— “कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा/उससे पहले नदी गई/अब खबर फैल रही है कि/मेरा गांव भी चंदा से जाने वाला है।”⁴

जंगल खुद ही अपनी बदहाली पर रोता है। उसका दर्द विकास के रथ पर चढ़े व्यक्ति को कहीं दिखता। वह अपनी पीड़ा आदिवासी को सम्प्रेषित करता है— “जंगल प्रकृति का नियामक है/जंगल का आदमी जानता है/कि मैं उसी का विस्तार हूँ/उसकी सृष्टि का समीप रूप/वह जानता है कि जंगल को नष्ट करना/खुद को नष्ट करना है।”

आदिवासी जंगल की पूजा करता है, इसीलिए उसी को हक है वह जंगल का उपयोग-उपभोग करे। आदिवासी जंगल, जमीन और जल के महत्त्व को समझ उसे बचाए रखता है। ऐसे प्रकृति पूजकों को बाह्य समाज पिछड़ा बताता है। इस पर आदिवासी नाराज होकर बाह्य समाज को उसका आइना दिखाता है। वहां की लड़की अपने परिवारजन से शहर में रिश्ता न करने की प्रार्थना करती है— “मत ब्याहना उस देश में/जहां आदमी से ज्यादा ईश्वर बसते हों/जंगल नदी पहाड़ नहीं हो जहां/वहां मन कर आना मेरा लगन उसी के संग ब्याहना जो/ कबूतर के गौड़े और पण्डुक पक्षी की तरह/रहे हरदम साथ/....चुनना वर ऐसा/ जो बजाता हो बांसुरी सुरीली/ और ढाल-मांदल बजाने में हो पारंगत।”⁶

आदिवासी-जाजनतीय समुदायों ने अपनी संस्कृति और जंगल की रक्षा ही नहीं की है। आदिवासियों ने आवश्यकता पड़ने पर देश समाज की रक्षा के लिए भी हाथ बढ़ाया है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से बहुत पहले ही आदिवासियों ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष संग्राम में बहुत पहले ही आदिवासियों ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

करना शुरू कर दिया था। सन् 1780 में संधाल परगना में आदिवासियों ने सबसे पहला आंदोलन किया। इसमें वीर तिलक को अंग्रेजों ने फांसी दी। 1855 में वीर योद्धा सिद्ध और कान्हू ने विद्रोह किया। 1913 में मानगढ़ में आदिवासी आंदोलन हुआ। स्पष्ट है कि इतिहास में इन आंदोलनों को पर्याप्त स्थान मिला। आदिवासी साहित्य में यही पीड़ा दिखाई देता है। आदिवासियों के संघर्ष के इतिहास को नकारने की पीड़ा महादेव टोपों की इन पंक्तियों में दिखता है— “तुम्हारी विजयगाथाओं/और संघर्षों के गवाह/पेड़ हैं नदियां हैं चट्टाने हैं/ पुरखों की आत्माएँ हैं/सरसस नदीरी है, जोहर थान हैं/तुम्हारे लोकगीत हैं/पर इन सकबी गवाही, उन्हें नहीं स्वीकार/इसलिए तुम इतिहास के ग्रंथों में/हाशिए पर डाल दिए गए हो/या कर दिए हो उससे बाहर।”⁷

स्पष्ट है आदिवासी-जनजाती समुदाय हमसे प्राचीन समुदाय हैं। ये हमारे पुरखों के जीवन को उसी ढंग से बनाए चले आए हैं। प्रारम्भिक मानव प्रकृति पर आश्रित रह। उसे पूजता, उससे डरता रहा। पूजने और डरने से टोटमवाद जैसी धार्मिक क्रियाएं निर्मित हुईं और ऐसे ही बने विश्वास। विकास और आधुनिकता की जो बुराइयां सम्य समुदाय में आ गईं, इसे आदिवासी समाज बचा रहा। प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर आज का आधुनिक मनुष्य कैसे पारिस्थितिकी संकट में घिरा बैठा है, यह डर पूरा विश्व देख रहा है। तकनीकी और बुद्धि पर अधिक जोर देकर मनुष्य कैसे तनाव में मर रहा है, यह किससे छिपा है। प्रकृति से निकटता, अनुकूलता, परस्परता ही मानव को जीवित रख सकती हैं। जनजातीय समुदायों की मान्यताएं, विश्वास और संस्कृति भले तर्कधारित न हो, मनुष्य के जीवन के लिए लाभधारित अवश्य हैं। इसलिए हमें भी आदिवासियों की कुछ मान्यताओं को अपनाना होगा और तो और आदिवासियों को तो स्वतंत्र छोड़ना होगा। ताकि वे ही प्रकृति को बचाए रख सकें। आदिवासी कवयित्री यही आह्वान अपनी कविता में कहती हैं— “आओ मिलकर बचाएं/अपनी बस्तियों को/नंगी होने से भीतर की आग/धनुष की डोरी/तीर का नुकलीपन/कुल्हाड़ी की धार/जंगल की ताजा हवा/नदियों की निर्मलता/पहाड़ों का मौन।”⁸ आदिवासी आवाज का सच्चा पहरूआ आदिवासी साहित्य बनकर सामने आया है, इसमें कोई दो राय नहीं।

संदर्भ संकेत

1. रमणिका गुप्ता – आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 19
2. रजत रानी मीनू – अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 37
3. हरिवंश – प्रभात खबर, दीपावली विशेषांक, 2014, पृष्ठ 100
4. अनुज लुगून – इस्पातिका, आदिवासी विशेषांक, जनवरी-जून, 2012, रांची, पृष्ठ 32
5. रामदयाल मुंडा – वापसी पुनर्मिलन और अन्य गीत, छोटा नागपुर प्रकाशन केन्द्र, रांची, 1988 ई, पृष्ठ 9
6. निर्मला पुत्तुल – नगाड़े की तरह बजाते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ 49
7. महादेव टोप्यो – इतिहास तुम्हारा है (कविता) सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ, 26
8. निर्मला पुत्तुल – नगाड़े की तरह बजाते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण, 2012 ई. पृष्ठ 76